जवाहर-ज्योति

ब्रह्मचर्य

प्रार्थना

कृपा जिनराज ! तू ऐसी, नहीं कोइ देव तो जैसी ।
त्रिलोकीनाथ तू कहिये, हमारी चाह हर चाहिये ॥ कृपा० ॥

श्रीजिनेश्वर भगवान की यह प्रार्थना की गई है । परमात्मा की प्रार्थना किस प्रकार करनी चाहिए इस संबंध में ज्ञानियों और भक्तों ने अपने हृदयगत भाव प्रकट करके जनता के समक्ष अनेक मार्ग प्रस्तुत किये हैं । फिर भी सर्वसाधारण जनता सरलता से प्रार्थना कर सके, इसके लिए कोई साधारण नियम होना

कि सूर्य की सहायता के बिना जीवन नहीं टिक सकता जीवन गति ही कठिन हो जाती है। अतएव सूर्य के प्रकाश की आवश्यकता बतलाने वाला भूल करता है। सूर्य की जीवन मे अनिवार्य उपयोगिता है। सूर्य अपनी निन्दा करने वाले को और अपनी प्रशंसा करने वाले को समान प्रकाश देता है वह किसी से भेद भाव नहीं रखता। सूर्य के विषय मे जब यह कहा जा सकता तब परमात्मा के विषय मे ज्ञानी जन इस प्रकार कहते है —

सूर्यातिशायिमहिमाऽसि मुनीन्द्र ! लोके ।

— भक्तामर स्तोत्र।

अर्थात—हे प्रभो ! तुम्हारी महिमा अनन्त सूर्यो से भी अधिक है। इस प्रकार जब परमात्मा अनन्त सूर्यो से भी अधिक महिमाशाली है तो उसकी प्रार्थना के बिना क्या जीवन सभव सकता है ? कदाचित् तुम कहोगे—सूर्य प्रत्यक्ष से जीवनोपयोगी जान पडता है मगर ईश्वर तो कहीं दीखता भी नहीं, ऐसी हालत मे ईश्वर का अस्तित्व और जीवन के लिए उसकी प्रार्थना की उपयोगिता कैसे मानी जा सकती है ?

इस प्रश्न के उत्तर मे ज्ञानी जन बतलाते है कि यदि तुम्हारी चर्म-चक्षु ईश्वर का साक्षात्कार करने मे समर्थ नहीं है तो इसमे क्या हुआ ? चर्मचक्षु के अतिरिक्त हृदय-चक्षु भी है और उसके द्वारा अपरोक्ष वस्तु जानी जा सकती है और उस वस्तु पर विश्वास भी किया जा सकता है। परमात्मा की प्रार्थना के विषय मे ज्ञानी जन यही आवाज करते है कि तुम चर्म-चक्षुओं पर ही निर्भर न बनो, हमारी बात पर भी चलो मानो। बचपन मे जब तुमने बहुत-सी वस्तुएँ नहीं देखी होती तब तुम माता के कथन पर तुम भरोसा करते हो। क्या उससे तुम्हे कभी

पूर्ण ब्रह्मचर्य की साधना के द्वारा पूर्ण ब्रह्मचर्य तक पहुंचा जा सकता है।

श्री उत्तराध्ययन सूत्र के १६ वें अध्ययन की निर्युक्ति में ब्रह्मचर्य के चार भेद बताये गये हैं। नाम ब्रह्मचर्य, स्थापना ब्रह्मचर्य, द्रव्य ब्रह्मचर्य और भाव ब्रह्मचर्य।

जो लोग नाम से ब्रह्मचारी हैं पर ब्रह्मचर्य का पालन नहीं करते, उनके ब्रह्मचारीपन को शास्त्र नाम ब्रह्मचर्य कहते हैं। नाम के ब्रह्मचर्य से कुछ भी होता-जाता नहीं है। उसके साथ 'भाव ब्रह्मचर्य' का होना आवश्यक है। जो भाव से ब्रह्मचर्य का पालन न करते हुए भी नाम से ब्रह्मचारी कहलाते हैं वे दुनिया में सन्मान प्राप्त करने की कामना करते हैं। संसार में हीरा-मोती पहनने वालों का आदर होते देख कर कितने-क लोग सच्चे हीरा-मोतियों के अभाव में, आदर-सत्कार पाने के लिए नकली हीरा-मोती पहनते हैं। नकली हीरा-मोती पहनने का उनका उद्देश्य सिर्फ यही होता है कि नखरे करके किसी प्रकार लोगों को धोखा दिया जाय। इसी प्रकार संसार में ब्रह्मचारी का आदर-सन्मान होते देखकर उसी प्रकार का आदर-सन्मान पाने की लालसा से कुछ लोग नाम मात्र के ब्रह्मचारी बन बैठते हैं—वे ब्रह्मचर्य का पालन नहीं करते। ऐसे ब्रह्मचर्य को शास्त्रकार 'नाम ब्रह्मचर्य' कहते हैं। यह नाम ब्रह्मचर्य की बात हुई।

जो स्वयं ब्रह्मचर्य का पालन नहीं कर सकता किन्तु ब्रह्मचर्य या ब्रह्मचारी की मूर्ति बनाकर और उससे काम चल जायगा—ऐसा सोचकर, मूर्ति की स्थापना करके उसे मानता है वह स्थापना

भीष्मकुमार की कथा

यह भीष्मकुमार की कथा है। पहले भीष्म का नाम गंगकुमार था। फिर उनका नाम देवव्रत हुआ और फिर भीष्म प्रतिज्ञा करने के कारण भीष्म नाम पड़ गया।

एक बार भीष्म से किसी ने कहा—आपने विवाह न करके बहुत बुरा किया है। इससे भारत को बहुत हानि पहुँची है। अगर आप विवाह करते तो आपकी संतान भी आपकी ही तरह पराक्रमी और वीर्यवान् होती पर आपके विवाह न करने से भारत ऐसी संतान से वंचित रह गया। यही भारत की बड़ी हानि है।

भीष्मकुमार ने कहा—मैं विवाह करता तो मेरी संतान भी मेरी जैसी होती, यह नहीं कहा जा सकता। क्षीरसागर में विष भी हो सकता है। मगर मेरे ब्रह्मचर्य को आदर्श मानकर न मालूम कितने व्यक्ति ब्रह्मचर्य का पालन करेंगे और इस प्रकार अपना तथा जगत् का कल्याण करेंगे।

गंगकुमार का विचार पहले ब्रह्मचर्य पालने का नहीं था। किन्तु उन्होंने सोचा—जहाँ तक मैं आजीवन ब्रह्मचर्य न पालूँगा तहाँ तक पिता की इच्छा पूरी नहीं हो सकती। इस प्रकार अपने पिता की इच्छा की पूर्ति के लिए उन्होंने आजीवन ब्रह्मचर्य पालन किया। इस कथा से यह भी विदित हो जायगा कि पिता का क्या धर्म है और पुत्र का क्या कर्त्तव्य है?

सत्यवती उर्फ मत्स्यगंधा या योजनगंधा को देख कर राजा शान्तनु ने उसके साथ वार्तालाप किया और मन ही मन यह भी निश्चय कर लिया कि इस सर्वोत्कृष्ट कन्या के साथ विवाह कर इसे

चलते हैं, उन्हें सुदास के कथन पर विचार करना चाहिए। एक साधारण श्रेणि का आदमी-भीवर भी अपनी कन्या के अधिकार व संरक्षण के लिए कितना उन्नत विचार रखता है। उच्च श्रेणि और उच्च-कुलीन होने का दावा करने वालों को अपनी पुत्री के अधिकारों के संबंध में कितने उन्नतर विचार रखने चाहिए।

सुदास का यह कथन सुनकर गगकुमार ने कहा—"तुमने ठीक कहा है। तुम्हें मेरे भावी पुत्र का भय है, पर यदि मैं विवाह ही नहीं करूँगा तो पुत्र कहाँ से आएगा? अतएव मैं देव, गुरु और धर्म की साक्षी से प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं जीवन-पर्यन्त विवाह नहीं करूँगा। मैं जीवन भर ब्रह्मचारी रहूँगा।"

गगकुमार ने विवाह करने का भी त्याग किया था, पर आज इससे ठीक विपरीत अवस्था दिखाई देती है। आज अनेक लोलुप विवाह करके भी नैमित्तिक सम्बन्ध जोड़ने से नहीं हिचकते। और यूरोप की तो लीला ही निराली है। वहाँ विवाह के बंधन को ही बुरा समझा जाता है। और कहा जाता है स्वेच्छा से बंधन में पड़ना भला-कौन सी बुद्धिमत्ता है! इस धारणा के कारण वहाँ स्वैर विहार का प्रचार हो रहा है। अनेक पुरुष और युवतियाँ वहाँ न विवाह करते हैं, न ब्रह्मचर्य ही पालते हैं! इससे दुराचार और तज्जन्य अनर्थ फैल रहे हैं। यह पतन का पथ है। पर तुम्हारे सामने तो भीष्म का भव्य आदर्श विद्यमान है। अतएव ब्रह्मचर्य की आराधना और साधना में ही अनेक महान् मंगल निहित हैं।

गगकुमार की इस भीष्म प्रतिज्ञा को सुना, तो सुदास और सत्यवती स्तब्ध रह गये। गगकुमार ने ऐसी भीष्म प्रतिज्ञा की

संतति-नियमन

समुद्रविजय-सुत श्रीनेमीश्वर, जादव कुल को टीको,
रतन कुख धरणा शिवादेवी, तेहनो नन्दन नीको।
श्री जिन मोहनगारो छे, जीवन प्राण हमारो छे ॥१॥

श्री अरिष्टनेमि भगवान् की यह प्रार्थना की गई है। आज मुझे जिस विषय पर बोलने के लिए कहा गया है, वह विषय भगवान् अरिष्टनेमि की प्रार्थना मे ही प्रतिभासित हो रहा है।

ससार की दशा सुधारने के लिए महापुरुषो ने जो आचरण किया है और उन्होने जिस पथ पर प्रयाण किया है, उस पथ का अनुसरण करने के लिए वे समस्त ससार को आह्वान कर गये है। उन्होने कहा – ऐ जगत् के जीवो! समय की विचित्रता और विपरीतता के कारण कदाचित् तुम्हारे सामने ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो सकती है जब तुम किंकर्तव्य-मूढ हो जाओ-तुम्हे यह न सूझ पडे कि ऐसी दशा में क्या करे, क्या न करे? उस

निवारण करने के लिए ही भगवान ने बाल-ब्रह्मचारी रहने की घोषणा नहीं की थी।

सतति-नियमन

भगवान् अरिष्टनेमि के समय में रसेन्द्रिय की लोलुपता बढ़ जाने का ही उल्लेख मिलता है, किन्तु इस जमाने में जननेन्द्रिय की लोलुपता ने प्रचण्ड रूप धारण किया है और इसके फल-स्वरूप सन्तानोत्पत्ति में वृद्धि हो रही है। सन्तानों की इस बढ़ती को देख कर कई लोग यह सोचने लगे हैं कि गरीब भारतवर्ष के लिए सन्तान-वृद्धि एक असह्य भार है। इस भार से भारत को बचाने के लिए उपाय ईजाद किया गया है कि सन्तान की उत्पत्ति के स्थान को ही नष्ट कर दिया जाय। न रहेगा बांस, न बजेगी बांसुरी।

यह उपाय सतति-नियमन या सतति-निरोध कहलाता है। और इसी विषय पर मुझे अपने विचार प्रकट करने के लिए कहा गया है। इस विषय का न तो मेरा अधिक अभ्यास है और न अध्ययन ही। पर समाचारपत्रों और कुछ पुस्तकों को पढ़ कर मैं यह जान पाया हूँ कि कुछ लोग बड़े जोर शोर से कहते हैं कि—बढ़ती जाती हुई सन्तान को अटकाने के लिए शस्त्र या औषध द्वारा स्त्रियों की जनन शक्ति का नाश कर दिया जाय, उनके गर्भाशय का ऑपरेशन कर डाला जाय, या फिर उनके गर्भाशय को इतना निर्बल बना दिया जाय कि सन्तान की पैदाइश हो ही न सके। इस उपाय द्वारा सतति-निरोध करने की आवश्यकता बतलाते हुए वे लोग कहते हैं—

प्रति द्रोह किया जा रहा है और उसकी उत्पत्ति का नाश किया जा रहा है उस दृष्टि पर यदि गहरा और दूरदर्शितापूर्ण विचार किया जाय तो, जान पड़ेगा कि यह दृष्टि धीरे-धीरे बढ़ती हुई कुछ-भी काम न कर सकने वाले—अतएव भार-स्वरूप समझ लिये जाने वाले—वृद्ध और अपाहिज पुरुषों के विनाश के लिए प्रेरित करेगी। इससे जिस प्रकार सन्तान के प्रति व्यवहार किया जा रहा है उसी प्रकार वृद्धों के प्रति भी निर्दयतापूर्ण व्यवहार करने की भावना उत्पन्न होगी। फिर स्त्रियां भी यह सोचने लगेंगी कि मेरा पति अब अशक्त और अयोग्य हो गया है। वह मेरे लिए अब भार-स्वरूप है और मेरी स्वतन्त्रता में बाधक है। ऐसी दशा में क्यों न उसका विनाश कर डाला जाय। पुरुष भी इसी प्रकार स्त्रियों को अयोग्य एवं असमर्थ समझ कर उनके विनाश का विचार करेंगे। इस प्रकार शस्त्र या औषध का जो कृत्रिम उपाय, खर्च से बचने और सतति-नियमन के काम में लाया जाता है, वही उपाय स्त्री और पुरुष के प्राणों का संहार करने के काम में लाया जाने लगेगा। परिणाम यह होगा कि मानवीय सद्गुणों का नाश हो जायगा, समाज की शृंखला भग्न हो जायगी, हिंसा-राक्षसी की चटाल-चौकड़ी मच जायगी और जो भयंकर काल अभी दूर है वह एकदम नजदीक आ जायगा।

सतति-नियमन के भयंकर और प्रलयंकर उपाय से और भी अनेक अनर्थ उत्पन्न हो सकते हैं। इस उपाय के विषय में स्त्रियाँ यह सोच सकती हैं कि सतान की बदौलत ही मेरे गर्भाशय का ऑपरेशन किया जाता है, अतएव ऑपरेशन की झंझट से बचने के लिए सतान उत्पन्न होते ही क्यों न उसका गला घोंट दूं?

[illegible] किया की जायगी तो प्रत्यक्ष हिंसा करने में भी घृणा [illegible] जायगी।

कहा जा सकता है कि इस [illegible] जाने वाली संतान का निग्रह किस प्रकार करना चाहिए? संतान का नियमन न किया जाय तो पिछले की तरह संतान बढ़ाते हुए चले जावें? इस प्रश्न के उत्तर में सबसे पहले हम यह कहना चाहते हैं कि विषयवासना को सदा के लिए ही शांत क्यों न कर दिया जाय? काम-वासना में [illegible] क्यों की जाय और स्त्री-प्रसंग क्यों किया जाय? इस समस्या का हल करने के लिए भीष्म पितामह और भगवान अरिष्टनेमि का आदर्श सामने रखकर ब्रह्मचर्य का ही पालन क्यों न किया जाय? ब्रह्मचर्य का पालन यदि पूर्ण रूप से किया जाय तो संतति-नियमन की आवश्यकता ही प्रतीत नहीं होगी।

किसी ने भीष्म से कहा—आपने विवाह न करके संसार को बहुत हानि पहुंचाई है। आपने ब्याह किया होता तो आपकी संतान भी आपकी ही तरह बलवान होती और बलवान संतान से संसार का बड़ा उपकार होता।

भीष्म ने उत्तर दिया—बुद्धि भ्रष्ट होने से ही ऐसे प्रश्न उत्पन्न होते हैं। पहले तो यह कहना ही कठिन है कि विवाह करने से पुत्र होता ही। संसार में अनेक लोग विवाहित होने पर भी पुत्र-हीन देखे जाते हैं। कदाचित् पुत्र होता भी तो क्या प्रमाण है कि वह मेरे जैसा [illegible] वीर होता या नहीं?

महात्मा [illegible] आशंका निर्मूल नहीं है। आज भी अनेक उ[illegible] हैं जिनसे जान पड़ता है कि

इसके लिए मैंने पहले आम का उदाहरण दिया है। उस पर विचार करो। जिस प्रकार आम का पेड़ बना रहे उसके फल भी आवश्यकतानुसार ही आवें और वे फल सब के लिए लाभदायक हों, इस बात के लिए जो उपाय पहले सोचा गया था वैसा ही कोई उपाय संतान के लिए भी हो सकता है या नहीं? इस प्रश्न पर गहरा विचार करो। अगर ऐसा कोई उपाय संभव हो तो क्यों न उसका ही प्रयोग किया जाय? और क्यों औषधियों द्वारा गर्भाशय को नष्ट करने की विडम्बना की जाय?

पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करना संतति-निरोध का सर्वोत्तम उपाय है। यदि यह शक्य न हो तो जब तक स्त्री-पुरुष में अपनी संतान के पालन-पोषण की शक्ति न आवे तब तक ब्रह्मचर्य का नियमित रूप से पालन करना चाहिए अथवा दो-चार संतान उत्पन्न हो जाने के पश्चात् संयोग धारण कर विषय-सेवन से निवृत्त हो ब्रह्मचर्य में प्रवृत्त होना चाहिए।

इस प्रकार ब्रह्मचर्य का साध्य होने से संतति-नियमन की समस्या सहज ही सुलझ जाती है। फिर उसके लिये हानिकारक उपायों का अवलम्बन करने की आवश्यकता नहीं रह जाती। संतति-नियमन के लिए ब्रह्मचर्य उत्तम उपाय है। पर विलासी लोग इसका उपयोग न करते हुए चाहते हैं कि न तो विषय-भोग का परित्याग करना पड़े और न संतान ही उत्पन्न होने पावे। और इस दुरभिसंधि की पूर्ति के लिए शस्त्र-प्रयोग आदि उपायों से जनन-शक्ति का ही नाश करने की तरकीबें खोजते हैं। पर स्मरण रखना, यदि ब्रह्मचर्य का पालन न करके कृत्रिम उपायों द्वारा संतति-नियमन किया जायगा तो इससे भविष्य में व्यभिचार और असीम

उत्तर देगा, ? निस्सन्देह वह यही कह सकता है कि अगर आप उपवास नहीं कर सकते तो आपके रोग की औषधि इस चिकित्सालय में नहीं है। इसी प्रकार जब तुम विषय-भोग की इच्छा को जीत नहीं सकते, तो ब्रह्मचर्य के सिवाय और क्या इलाज है? तुम ब्रह्मचर्य का पालन नहीं करना चाहते और विषय-भोग की प्रवृत्ति चालू रखकर संतति का नियमन करना चाहते हो तो इसका अर्थ यही है कि तुम संतति-नियमन के सच्चे उपाय को काम में नहीं लाना चाहते, बल्कि विषय-वासना की पूर्ति में तुम्हें संतान बाधक जान पड़ती है, इसलिए उसका निरोध करना चाहते हो।

खेद है कि लोगों के मन में यह भ्रम उत्पन्न हो गया है कि विषय-भोग की इच्छा का दमन करना असम्भव है। परन्तु जैसे नैपोलियन ने असम्भव शब्द को कोश में से निकाल डालने को कहा था, उसी प्रकार तुम अपने हृदय में से काम-भोग की इच्छा का दमन करने की असम्भवता को निकाल बाहर करो। ऐसा करने से तुम्हारा मनोबल सुदृढ़ बनेगा और तब विषय-भोग की कामना पर विजय प्राप्त करना तनिक भी कठिन न होगा।

हनुमान की कथा

मर्यादित ब्रह्मचर्य का पालन करके उत्पन्न की हुई संतान कितनी बलिष्ठ होती है, इस बात को समझने के लिए हनुमान की कथा पर विचार करो। हनुमान हमें बल देंगे इस भावना से लोग उनकी पूजा करते हैं पर हनुमान की मूर्ति पर तेल या सिंदूर पोत देने से ही क्या बल की प्राप्ति हो सकती है? हनुमान को जिस बल की प्राप्ति हुई थी वह ब्रह्मचर्य के ही प्रताप से हुई थी।

एक बालक गन्ने का टुकड़ा तोड़कर चूस रहा है और दूसरा बालक शक्कर की डली चूस रहा है। दूसरे बालक ने पहले को शक्कर की डली दिखा कर कहा—देख कैसी मीठी है यह शक्कर! तब पहले बालक ने उत्तर दिया—यह शक्कर आई कहां से है? इसी गन्ने में तो शक्कर निकली है। मेरे इस गन्ने में तो शक्कर ही शक्कर भरी है।

'गन्ने में शक्कर भरी है' ऐसा कहने वाला बालक क्या असत्य बोलता है? उसका कहना यदि सत्य है तो गन्ने में से परिश्रम करके शक्कर निकालने का प्रयत्न करना क्या वृथा है? नहीं, प्रयत्न भी वृथा नहीं है और गन्ने में शक्कर भरी है यह कहना भी असत्य नहीं है। क्योंकि गन्ने में शक्कर होती है तभी प्रयत्न करने से वह निकल सकती है। शक्कर में निर्यालिस शुद्ध मिठास होती है, जब कि गन्ने में मिठास के साथ ही अन्य वस्तुएँ मिली रहती हैं। दोनों में इतना ही अन्तर है।

इसी प्रकार प्रार्थना कहीं बाहर से नहीं आती। जिस प्रकार गन्ने में शक्कर व्याप्त है उसी प्रकार आत्मा में परमात्मा की प्रार्थना व्याप्त है। यह बात दूसरी है कि जैसे गन्ने में व्याप्त शक्कर के साथ अन्य पदार्थ मिले रहते हैं, उसी प्रकार आत्मा में व्याप्त प्रार्थना भी अन्य वस्तुओं में मिली हो। मगर जैसे क्रिया द्वारा गन्ने में से शक्कर निकाली जा सकती है उसी प्रकार प्रयत्न द्वारा आत्मा में व्याप्त प्रार्थना भी बाहर निकाली जा सकती है। आत्मा में व्याप्त उस प्रार्थना को महात्मा पुरुषों ने कड़ियों के रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है। किन्तु प्रार्थना की वह कड़ियाँ भी आत्मा में से ही बाहर निकलती हैं।

एक बालक गन्ने का टुकड़ा लेकर चूस रहा है और दूसरा बालक शक्कर की डली चूस रहा है। दूसरे बालक ने पहले को शक्कर की डली दिखला कर कहा—देख कैसी मीठी है यह शक्कर! तब पहले बालक ने उत्तर दिया—यह शक्कर आई कहा से है? इसी गन्ने में तो शक्कर निकली है। मेरे इस गन्ने में तो शक्कर ही शक्कर भरी है।

गन्ने में शक्कर भरी है ऐसा कहने वाला बालक क्या असत्य बोलता है? उसका कहना यदि सत्य है, तो गन्ने में से परिश्रम करके शक्कर निकालने का प्रयत्न करना क्या वृथा है? नहीं, प्रयत्न भी वृथा नहीं है और गन्ने में शक्कर भरी है यह कहना भी असत्य नहीं है। क्योंकि गन्ने में शक्कर होती है तभी प्रयत्न करने से वह निकल सकती है। शक्कर में निखालिस शुद्ध मिठास होती है, जब कि गन्ने में मिठास के साथ ही अन्य वस्तुएँ मिली रहती है। दोनों में इतना ही अन्तर है।

इसी प्रकार प्रार्थना कहीं बाहर से नहीं आती। जिस प्रकार गन्ने में शक्कर व्याप्त है उसी प्रकार आत्मा में परमात्मा की प्रार्थना व्याप्त है। यह बात दूसरी है कि जैसे गन्ने में व्याप्त शक्कर के साथ अन्य पदार्थ मिले रहते है, उसी प्रकार आत्मा में व्याप्त प्रार्थना भी अन्य वस्तुओं में मिली हो। मगर जैसे क्रिया द्वारा गन्ने में से शक्कर निकाली जा सकती है उसी प्रकार प्रयत्न द्वारा आत्मा में व्याप्त प्रार्थना भी बाहर निकाली जा सकती है। आत्मा में व्याप्त उस प्रार्थना को महात्मा पुरुषों ने कड़ियों के रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है। किन्तु प्रार्थना की वह कड़ियाँ भी आत्मा में से ही बाहर निकलती है।

वेदान्त और उपनिषद में मानव का बड़ा महत्त्व बतलाया गया है। वहाँ मनुष्य को अग्नि के रूप में वर्णन किया गया है। जिस अन्न और पानी को हम खाते हैं वह अन्न और पानी भी पेट के पेट में पहुँच कर भस्म हो जाता है, इस कारण मनुष्य को अग्नि कहा गया है। पेट में पहुँच कर अन्न-पानी किस प्रकार से हो जाता है और रस भाग एवं मल-भाग किस प्रकार अलग-अलग हो जाता है, यह विषय बहुत लम्बा है। अतएव इस ग्रन्थ में इतना ही कहना चाहता हूँ कि मनुष्य के पेट में अन्न-पानी भी भस्म हो जाता है। इसी कारण वेदान्त और उपनिषद् मनुष्य को अग्नि-रूप में वर्णन किया गया है। डाक्टर भी किसी भी मनुष्य की अग्नि की पहले परीक्षा करता है। मनुष्य एक गतिमान और चलती-फिरती आग है। इस आग में जो कुछ भी क्षेप किया जाता है वह बेकार नहीं जाता किन्तु आहुति के रूप में पलट जाता है। अन्न-पानी से वीर्य बनता है और वीर्य से बाद में उसी प्रकार की सन्तान उत्पन्न होती है। ऐसी यह परम्परा है। परन्तु इस परम्परा में, यह ध्यान रखना चाहिए कि अन्न जल जैसा होगा, वीर्य वैसा ही बनेगा और जैसा वीर्य होगा, वैसी ही सन्तान उत्पन्न होगी। अतएव जो अपने धर्म, कर्म, अपनी परम्परा और अपनी भावी सन्तान का ध्यान रखता है वही मनुष्य कहलाता है।

इस कथन से एक प्रश्न यह उपस्थित होता है कि इस दृष्टि से तो विद्वान्-मूर्ख, बालक-वृद्ध, भंगार और नागरिक, सभी मनुष्य कहलाने लगेंगे। इस प्रश्न का समाधान करते हुए ज्ञानी-जन कहते हैं कि जिनमें मानव-धर्म पाया जाय उन्हें ही मानव

शास्त्र में मेघकुमार के अध्ययन में कहा है कि मेघकुमार जन्मकुमार था। उसने बचपन से ही सब क्रियाएँ सीख ली थीं और भी जब वह कुछ बड़ा हुआ तो वह कलाचार्य के सुपुर्द कर दिया गया था। वहाँ वह लेखन-शिक्षा से लगाकर शकुन-शास्त्र तक शिक्षा की ७२ कलाएँ सीखा था। इन ७२ कलाओं में मानव-जीवन की आवश्यकता सम्बन्धी समस्त बातों का समावेश हो जाता है। इस विषय का पूर्ण विवरण ज्ञान-सूत्र (नाया धम्मकहा) में दिया गया है। यहाँ उसके विस्तारपूर्वक वर्णन करने का अवकाश नहीं है। इस समय तो सिर्फ यही कहा जा सकता है कि प्राचीन काल में सब को ७२ कलाएँ सूत्र से, अर्थ और कर्म से सिखाई जाती थीं। आजकल हाई स्कूलों और कॉलेजों में दी जाने वाली शिक्षा में तथा प्राचीन काल में दी जाने वाली शिक्षा में कितना अधिक अन्तर है? यह बात गहरे बैठ कर विचार करने से अपने-आप विदित हो जायगी। आजकल जो पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं उनका सक्रिय शिक्षण नहीं दिया जाता और आधुनिक शिक्षा की दुर्दशा का यही कारण है। आज के विद्यार्थी से अमुक वस्तु कर दिखाने के लिए कहा जाता है तो तत्काल उत्तर मिलता है—'यह वस्तु कैसे बनती है, यह बात हमने पुस्तक में पढ़ी है, जानी है, पर बनाने में हम असमर्थ हैं।' इस प्रकार की निष्क्रिय शिक्षा से उद्दीयमान प्रजा को कितना और क्या लाभ पहुँच सकता है, यह एक विचारणीय बात है।

शास्त्र में मेघकुमार की शिक्षा के विषय में यह बताया गया है कि उसने पहले सूत्र-रूप में शिक्षा ग्रहण की, फिर अर्थ-रूप में

यकता है ? भाव-धर्म के बिना क्या हमारा काम रुक जायगा ? स प्रश्न का उत्तर यह है कि जिस भाव-धर्म के लिए द्रव्य-धर्म किया जाता है उस भाव-धर्म को ही यदि भुला दिया जाय तो फिर व्य उन्नति कैसे हो सकती है ? तुम जो कुछ भी करते हो वह किसके लिए करते हो ? आत्मा के लिए ही करते हो न ? तब यदि आत्मा को ही न जानो तो उसकी उन्नति किस प्रकार कर सकते हो ? और इस प्रकार जब तक आत्मा को न जानो, तब तक भाव धर्म की साधना भी किस प्रकार हो सकती है ?

यदि कोई कहे कि हम तो यह भी नहीं जानते कि आत्मा क्या चीज है ? तो इसका उत्तर यह है कि तुम जिस शरीर को प्रत्यक्ष देख रहे विचार करो कि शरीर कार्य है या कारण ? शरीर कार्य है और उसका कारण पंच-भूत है। जैसे घड़ी कार्य है और उसके सोचे उसके कारण है, इसी प्रकार शरीर कार्य है और पांच-भूत उसके कारण है। यहाँ तक समझने मे तो भूल नहीं होती, पर आगे चलने पर भूल हो जाती है। अब आगे यह समझिये कि शरीर जब कार्य है तो इसका कर्त्ता कौन है ? केतनेक लोग कहते है कि जैसे पुर्जे तरतीववार जमा देने से घड़ी चालू हो जाती है, इसी प्रकार पांच भूतो के सयोग मात्र से यह शरीर भी बोलता चलता बन जाता है। जैसे घड़ी के पुर्जे बिखरने से घड़ी बन्द हो जाती है उसी प्रकार पाँच भूतो के बिखरने से यह शरीर भी बोलता चलता नहीं रहता। इसके लिए परलोक या आत्मा को मानने की क्या आवश्यकता है ?

कल-पुर्जों को यथास्थान जमा देने से घड़ी चालू हो जाती है, यह तो ठीक है, पर प्रश्न तो यह है कि पुर्जों को जमाया किसने

उदयपुर में एक वकील ने मुझ से प्रश्न किया था कि आत्मा [illegible] अविनाशी है, वह किसी का मारा मरता नहीं है तो किसी [illegible] मारने से पाप कैसे लग सकता है ? इस प्रश्न के उत्तर में [illegible] कहा था—आत्मा अविनाशी है इसीलिए पाप लगता है और [illegible] पाप का फल भोगना पड़ता है। आत्मा अगर विनाशी होता [illegible] कोई झगड़ा ही न रहता ! मारने वाला और मरने वाला यदि [illegible] हो जाता तो पाप का प्रश्न ही कैसे उपस्थित होता ? लोक-[illegible]वहार में भी जो मर जाता है उसके ऊपर किसी प्रकार का [illegible]वा नहीं हो सकता !

इसी प्रकार आत्मा यदि नाशशील होता तो किसी प्रकार [illegible] झगड़ा ही न रहता। मरे हुए पर दावा नहीं होता पर जीवित [illegible] तो होता है न ? इसी तरह मारने वाला भी नष्ट नहीं हुआ और मरने वाला भी नष्ट नहीं हुआ है अतएव किसी को मारने से [illegible]ाप भी लगता है और उस पाप को धोने के लिए धर्म की भी आवश्यकता रहती है।

कहने का तात्पर्य यह है कि जो सब प्राणियों को आत्म-तुल्य मानेगा वह किसी के साथ वैर नहीं बांधेगा और इसलिये वह पाप का भी बंध नहीं करेगा। यह सामान्य मानव-धर्म है। श्री स्थानांग सूत्र में ग्राम धर्म, नगर-धर्म, राष्ट्र-धर्म, आदि दस धर्मों का वर्णन किया गया है। मैंने इन दस धर्मों पर व्याख्यान किया है, जो पुस्तक रूप में प्रकाशित भी हुआ है।* मुझे मालूम हुआ है कि यह पुस्तक लोगों को अत्यन्त उपयोगी साबित हुई है। इसी प्रकार

---

*देखो 'धर्म अने धर्मनायक', प्रसिद्धकर्ता—शान्तिलाल वनमाली शेठ।

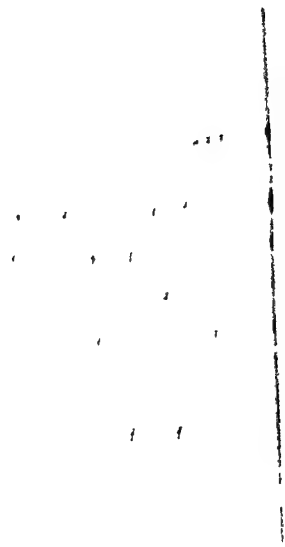

नये उसने तुम्हारा पालन-पोषण किया है और इसी कारण तुम्हारा जीवन टिक सका है। इतना होते हुए भी तुम कहते हो कि मानव-धर्म की क्या आवश्यकता है! जीवन में वस्त्र और भोजन की जितनी आवश्यकता है उससे कहीं अधिक आवश्यकता मानव-धर्म की है।

तुम्हारा ब्याह हुआ होगा। तुम कैसी स्त्री चाहते हो? अपने अनुकूल वर्त्ताव करने वाली स्त्री तुम सभी चाहते हो या प्रतिकूल चलने वाली? अनुकूल चलने वाली स्त्री सभी चाहते है, पर स्त्री यदि सामान्य-धर्म का पालन न करे तो क्या अनुकूल रह सकती है? साधारण धर्म का पालन करने के लिये ही पिता सन्तान का पालन करता है। धर्म की सहायता के बिना ससार एक श्वास भी नहीं ले सकता। धर्म का अर्थ है नियम। नियम-विरुद्ध एक श्वास भी न लेना यह मानव-धर्म है। तुम दूसरो में नियम देखना चाहते हो, पर यदि तुम स्वय भी नियम का पालन करो तो कितना अधिक लाभ हो सकता है।

यह तो धर्म के विषय में एक सामान्य बात कही गई है। अब धर्म का एक सूक्ष्म तत्व आपके सामने रखता हूँ। कोई यह कह सकता है कि आप जो कुछ कह रहे है, वह तो नीति है, धर्म नहीं। किन्तु स्मरण रखना चाहिए कि नीति, धर्म का ही एक अग है। नीति का आधार लेकर उस पर धर्म का महल किस प्रकार खडा करना चाहिए, इस बात का विचार करो। नीति किस प्रकार धर्म का पोषण करती है, यह बताने के लिए हितोपदेश की एक कथा कहता हूँ, जिससे यह बात जल्दी और सरलता से समझ मे आजाए।

[illegible] प्रमाणपत्र प्राप्त करेंगे।

इसी प्रकार [illegible] समय [illegible] जीवन-साधना की कसौटी समझें —[illegible] का स्वागत करते हैं और उनके आने [illegible] समझते हैं —यदि इस संकट की परीक्षा में [illegible] मे परमात्मा की भक्ति का प्रमाणपत्र प्राप्त [illegible]।

मघा की सत्प्रवृत्ति [illegible] जनता को अत्यन्त लाभ पहुँचा था। न तो उसके [illegible] हानि हुई थी और न प्रजा को ही। मघा के [illegible] लोगों ने वेश्यागमन, मदिरापान, चोरी आदि पाप-प्रवृत्तियों का परित्याग कर दिया था। उस समय होटल नहीं थे, अतएव होटलों के संबंध मे उसे कुछ कहना ही न था। हाँ, मघा जैसा कोई सुधारक आज हो तो वह होटल का व्यसन जरूर छुड़ा देता। आज होटलो के कारण कैसी-कैसी पाप-प्रवृत्तिया बढ़ गई है और लोग इन पाप-प्रवृत्तियो में पड़ कर किस प्रकार पतन की ओर प्रयाण कर रहे है, यह सब के सामने है। जिस जाति मे या जिस घर मे मास-मदिरा का सेवन तो दूर रहा उनका नाम तक लेना पाप माना जाता है, उन्हीं लोगो की सन्तान होटलो मे जाना सीख लेती है और धीरे-धीरे मास-मदिरा के खान-पान की पापमय प्रवृत्ति मे पड़ जाती है, ऐसा सुना जाता है। जो लोग मास का स्वाद चखने के लिए अथवा खरो का मास खाकर हृष्ट-पुष्ट बनने की आशा से मास का सेवन करते है, उन्हे यह भूल न जाना चाहिए कि

उन्होंने एक मंडल बनाया और मघा को दूर करने के उपाय सोचे। अन्त में राजा की शरण लेना निश्चित हुआ। पर उसका और उसके शिष्यों का कोई अपराध भी तो होना चाहिए? राजा से निर्वासन के लिए कहा जायगा तब वह कहेंगे—'मघा साधु परुष है, उसे गाँव बाहर क्यों निकाला जाय?' तब राजा के सामने यह कहना ठीक होगा—'मघा और उसके सब चेले उचक्के और लुटेरे हैं और उनके कारण प्रजा को अत्यन्त त्रास हो रहा है। उनके त्रास के आगे राजसत्ता भी झख मारती है।' यह सुन कर राजा मघा के ऊपर कुपित होंगे और हमारी योजना सफल हो जायगी, क्योंकि राजा हमारे ऊपर विश्वास करते हैं।

इस प्रकार निश्चय करके, राज-कर्मचारियों ने अपना संगठन और सुदृढ़ करने का निश्चय किया। संगठन-शक्ति अच्छे कार्य के लिए भी प्रयुक्त की जा सकती है और किसी अच्छे कार्य में रोड़ा अटकाने के लिए भी प्रयुक्त की जा सकती है, क्योंकि शक्ति वह दुधारी तलवार है जिससे रक्षण और भक्षण दोनों काम लिये जा सकते हैं। राजकर्मचारियों के स्थापित किये हुए मंडल में पाप-प्रवृत्तियों द्वारा धन उपार्जन करने वाले कुछ लोग और शामिल हो गये। सब ने मिलकर मघा और उसके शिष्यों के विरुद्ध एक आवेदन-पत्र तैयार किया और राजा के पास ले गये।

मगध-नरेश को सूचना दी गई कि अमुक-अमुक राजकर्मचारी आपसे मिलने के लिये आये हैं। पर उस समय राजा स्वयं मदिरा के नशे में चूर हो रहा था। जब नशा कम हुआ तो

[illegible]

[illegible]

[illegible]

विद्रोही होने न-होने [illegible] उत्तर-दायित्व तो [illegible]

सेना-नायक ने मघा और [illegible] — तुम लोगों ने गाँव में [illegible] फौरन ही हथकड़ी बेड़ी पहन लो और [illegible] ने तुम्हें गिरफ्तार कर लाने का आदेश [illegible]

सेना-नायक की बात सुनते ही मघा और उसके साथियों ने अपने अपने हाथ जवे कर दिये। सैनिकों ने उन्हें हथकड़ी पहना दी। इसके बाद बेड़ी पहनने को कहा गया तो सब ने पैर जब कर दिये। उनके पैर बेड़ियों से जकड़ दिये गये। हथकड़ियाँ और बेड़ियाँ पहना कर सैनिक ऐसे प्रसन्न हुए मानो बड़ा जंग जीत लिया हो। इधर मघा और उसके शिष्य सत्य के आभूषण पाकर प्रसन्न हुए। चोरी, अत्याचार या अन्याय करके हथकड़ी-बेड़ी पहनना बुरी बात है, पर चोरी अत्याचार या अन्याय का प्रतिकार करने के उपलक्ष्य में हथकड़ी-बेड़ी पहननी पड़े तो सच्चे सेवक को इन्हें 'सेवा के आभूषण' समझकर प्रसन्न होना चाहिये। हथकड़ी-बेड़ी ही सच्चे सेवक के सर्वश्रेष्ठ आभूषण हैं।

सैनिकों ने जब मघा और उसके शिष्यों को गिरफ्तार करके हथकड़ी-बेड़ी पहनाई, तब तक गाँव-भर के लोग जमा हो गये थे। वे सब मघा की ओर एक इशारे की प्रतीक्षा करते हुए देख रहे थे। मघा एक इशारा करे, और सारी फौज को मार के मारे भागने की जगह न मिले। सेना कदाचित् हमें मारने दौड़ेगी तो भी कितनों को मारेगी? मघा ने जनता के भाव समझ लिये।

जन-सेवा

(२)

प्रार्थना

श्री मुनिसुव्रत साहवा, दीनदयाल देवा तणा देव के ।
तरण तारण प्रभु माहरणा, उज्ज्वल चित समरु नित्यमेव क ॥

श्री मुनिसुव्रत साहवा ।

श्री मुनिसुव्रत भगवान की यह प्रार्थना है । परमात्मा की प्रार्थना करने का सार है अपनी लघुता का भान हो जाना । परमात्मा की प्रार्थना करने के लिए अपने बड़प्पन को, अपने अभिमान को, और अपने अहंकार को छोड़ देना चाहिए । ऐसा करने पर ही प्रार्थना करने की योग्यता प्रगट होती है ।

[illegible]

[illegible] हो। इसके [illegible] [illegible] [illegible]

महात्माजी का मिलन

मैं तुम्हें एक बात [illegible] यद्यपि देर से याद [illegible] है फिर भी [illegible] मे कहता हूँ।

गाधीजी कल सवेरे [illegible] और सन्ध्या को लौट गये। उन्हे देखने के लिए हजारो आदमी गये होंगे। पर जो लोग गये थे उनसे मैं यह पूछना चाहता हूँ कि उन्होने गाधीजी में क्या देखा? उनका स्थूल शरीर [illegible] उनका कार्य?

गाधीजी इस समय के सुधारक या महापुरुष गिने जाते है। सो क्या स्थूल शरीर की बदौलत या कार्य की बदौलत?

कल गाधीजी यह मेरे पास भी आये थे। मैने उनकी सादगी देखी। एक छोटा-सा पचा पहना हुआ था और एक छोटा-सा कपडे का टुकडा शरीर पर ओढा हुआ था। उनकी यह कितनी सादगी! इस सादगी के कारण लोग उन्हे देखने जाते हैं और बुरी तरह घेर लेते है। वह कहते थे—मै आपके व्याख्यान मे नही आ सका, क्योकि लोग मुझे आराम से बैठने ही

गांधी जयन्ती

प्रार्थना

[illegible]

त्यागी [illegible] सघन भार ।

निज आतम अनुभव [illegible] पद अविकार ॥श्री०॥

भगवान् सुबुद्धिनाथ [illegible] । इस प्रार्थना मे यह बताया गया है कि सुबुद्धिनाथ भगवान सुबुद्धिनाथ किस प्रकार बने । भगवान सुबुद्धिनाथ का परमात्मपद पाने में जो विघ्न या अंतराय बाधक हो रहे [illegible] पर उन्होंने विजय-लाभ किया था । इस विजय के [illegible] व्यापार मे भगवान् सुबुद्धिनाथ का आत्म-धर्म प्रगट हुआ था । प्रार्थना मे कही हुई बात को सुनकर यह विचार उद्भूत होता है कि—हे प्रभो ! आपके और मेरे बीच जरा-सा [illegible] — थोड़ी-सी दूरी है । आपने अपने विघ्नों को हटा दिया [illegible] और मैं उन्हें अबतक हटा नहीं सका हूँ । बस यही मुझमे और आप मे फासला है—यही पर्दा है । इसी पर्दे के कारण मैं आपसे दूर पड़ा हूँ ।

[illegible] ही [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] मारना [illegible] मारने [illegible] मारने [illegible] मारने

गांधीजी को क्षमा के विषय में एक बात सुनी जाती है। दक्षिण अफ्रिका में गांधीजी ने सत्याग्रह संग्राम छेड़ा था। उस समय एक पठान को न मालूम क्यों यह संदेह हो गया कि उन्हों ने हमें तो सत्याग्रह में झोंक रक्खा है और आप स्वयं सरकार से मिल गये है। पठान इस संदेह के कारण गांधीजी पर अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और उन्हें मार डालने तक के लिए तत्पर हो बैठा।

एक दिन पठान को गांधीजी मिल गये। पठान मौका देख ही रहा था, उसने उन्हें उठाकर गटर में पटक दिया। गांधीजी चोट खाकर बेहोश हो गये। उनके मित्रों ने पता लगाकर उन्हें अस्प-

परमात्मा [illegible] मानते हैं कि परमात्मा [illegible] द्वारा सर्व-व्यापक। [illegible] का है। पुरातन [illegible] आधार पर परमात्मा [illegible] की है।

जिन्होंने ज्ञान का मर्म नहीं पाया है और जिनका अन्तःकरण राग द्वेष से मलिन है उनमें अहंकार और ममत्व की प्रबलता होती है। वह अहंकार या ममकार लौकिक वस्तुओं तक सीमित नहीं रहता। जब उसकी अत्यधिक प्रबलता होती है तब परमात्मा जैसी सार्वजनिक वस्तु भी अहंकार की परिधि में आ जाती है और लोग अभिमान के साथ कहते हैं—परमात्मा हमारा है, वह किसी और का नहीं है। पर किसी का कोई भी प्रयत्न जैसे आकाश को सार्वजनिक होने से नहीं रोक सकता, उसी प्रकार वह ईश्वर को भी साम्प्रदायिकता के तंग दायरे में बंद नहीं कर सकता। अतएव हमें यह स्वीकार करना चाहिए कि परमात्मा सब का है अर्थात् उसकी भक्ति से सब अपना कल्याण कर सकते हैं। परमात्मा के विषय में भेदभाव को कोई स्थान नहीं है।

प्राचीन काल के महात्माओं की कृतियों में, यदि उन्हें बारीक दृष्टि से देखा जाय तो, स्पष्ट प्रतीत होगा कि वे इस बात का पूर्ण ध्यान रखते थे कि धर्म क्लेश कलह का कारण न हो

'हर' शब्द की भी ऐसी ही व्युत्पत्ति है। अर्थात् जो पापों का हरण, विनाश करता है, वह हरि या हर कहलाता है। शिव किसे कहते हैं, इस संबंध में कहा गया है—'सत्यं शिवं सुन्दरम्' अर्थात् जो सत्य है, शिव यानी कल्याणमय है और सुन्दर है, वह हर या शिव है। त्रिलोकीनाथ हरि से पाप हरण करने की प्रार्थना की गई है और पापों को हरने में हरि और हर समान अर्थ रखते हैं। फिर इन दो नामों के अर्थ में—जिसके यह दो नाम हैं उस परमात्मा में अन्तर क्या है?—जिससे नाम की आड़ लेकर सिर-फुटौवल किया जाय? बौद्ध लोग भले ही परमात्मा को 'बुद्ध' नाम देकर उसकी प्रार्थना करते हैं, पर वस्तु तो वही है। उनकी प्रार्थना भी पाप का नाश करने के लिए ही है। फिर हरि, हर या बुद्ध में भेद क्या रहा? मीमांसक उस परमतत्त्व को कर्म-रूप मानते हैं। पर वे कर्म, पापनाश

इन श्लोकों में परमात्मा का पार्थक्य ब्रह्मा विष्णु शिव और पुरुषोत्तम आदि नामों से की गई है। यहां इन सब में किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं रक्खा गया है। आचार्य हेमचन्द्र ने कहा है—

तत्र यत्र समये यथा तथा, योऽसि सोऽस्यभिधया यया तया।
वीतदोषकलुषः स चेद्भवान्, एक एव भगवन्! नमोऽस्तुते॥

अर्थात्—चाहे जिस सम्प्रदाय में, चाहे जिस रूप में चाहे जिस नाम से, आप चाहे जो हों समस्त दोषों से रहित आप एक ही हैं। ऐसे हे एक-रूप भगवन्! आपको नमस्कार हो।

इस श्लोक में स्पष्ट रूप से परमात्मा के विभिन्न नामों में एकता का प्रतिपादन किया गया है। वास्तव में प्रार्थना करने से पहले हमें प्रार्थना के उद्देश्य का निश्चय कर लेना चाहिए। हम पाप क्षय के लिए प्रार्थना करते हैं या पाप नष्ट करने के लिए? यदि प्रार्थना का उद्देश्य पाप नष्ट करना है तो परस्पर की भिन्नता और द्वेष-भाव से पाप नष्ट नहीं होते। पाप नष्ट करने का उपाय क्या है, यह मैं आपको बतलाना चाहता हूँ। आप ध्यान लगा कर सुनें और उदारता के साथ उस पर विचार करें।

सूर्य निकलने पर भी जो लोग सुप्त पड़े रहते हैं जिनमें जागृति का कोई चिन्ह नजर नहीं आता, उनके लिए जिस प्रकार सूर्य का निकलना और न निकलना बराबर है उसी प्रकार सूर्य से भी अधिक तेजस्वी महापुरुष का जन्म-दिन होने पर भी जो सुप्त और निरुत्साह बना हुआ है उसके लिए महापुरुष का जन्म होना निरर्थक है।

आप यह कह सकते हैं कि हम आनन्द उल्लास के साथ आज कृष्ण का जन्म-उत्सव मनाएँगे। फिर हमारे लिए कृष्ण-जन्म निरर्थक क्या है? मगर मैं पूछता हूँ—जन्म-दिन मनाने का आपका तरीका क्या है? अच्छा खाना-पीना और पहनना-

अत्याचारों [illegible]
अत्याचारों [illegible]
में लगाया [illegible]
[illegible]
[illegible] अपनी
[illegible] कारण
[illegible] समझने लगा
कि जगत में मैं ही [illegible] संसार में
और कोई नहीं है।

जैन शास्त्र कहता है—कंस का अन्याय देख कर उसके भाई अतिमुक्त ने यह निश्चय किया—'जो अपने पूजनीय पिता को कैद करके आप राजा बना है और प्रजा पर घोर से घोर अत्याचार कर रहा है उसके आश्रय में रहना और उसके अन्याय के विष से विषैले टुकड़े खाना आत्मा का हनन करना है। जंगल में रहना और निरवद्य एवं नीरस आहार पर निर्वाह करना बेहतर और श्रेयस्कर है। कंस के पास रह कर अन्याय का प्रसाद लेना मेरे लिए उचित नहीं है।' ऐसा विचार कर अतिमुक्त ने दीक्षा धारण की और वे मुनि बन गये। एक बार अतिमुक्त मुनि भिक्षा के लिए या कंस की राजचर्या जानने के लिए कंस के महल में गये। वहां कंस की रानी जीवयशा मदान्ध होकर मुनि का उपहास करने लगी। उपहास के साथ वह मुनि के प्रति कटुक शब्दों का भी प्रयोग करने लगी। वह बोली—'वाह वाह! यह देखो राजघराने में पैदा हुए हैं। कुल को कलंक लगाते हुए इन्हें लाज नहीं आती। हाथ से कमाकर नहीं खाया

[illegible] जीवयशा [illegible] लगी—'[illegible] [illegible] वर्षी के [illegible] उसके रोंगटे [illegible] हो गये। [illegible] जीवयशा अपना मुँह [illegible] उदास बैठी [illegible] में [illegible] कंस भी [illegible] समीप इसी [illegible] में [illegible] उदास देख कर कंस ने कहा—'प्रिये! [illegible] का कारण क्या है? [illegible] प्रफुल्लित रहने वाले तुम्हारे [illegible] पर [illegible] क्यों झलक रही है? जब तुम उदासीन रहोगी तो संसार में प्रसन्नता किसके हिस्से आएगी? बताओ, उदासी का क्या कारण है?

जीवयशा ने कहा—नाथ मेरी उदासीनता का गहरा कारण है। यह कारण इतना भयंकर है कि मुँह से कहते भी नहीं बनता।

कंस—आखिर कहे बिना कैसे चलेगा। उसका प्रतिकार करना होगा। बिना कहे कैसे प्रतिकार होगा?

जीवयशा—आज आपके भाई अतिमुक्त अनगार यहाँ आये थे। मैंने उनका उपहास किया और कुछ कठोर वचन भी मुँह से निकल गये। उन मुनि ने मुझे कुछ शिक्षा देने के साथ अत्यन्त अनिष्टसूचक भविष्यवाणी की है। उसका स्मरण आते ही कलेजा मुँह को आता है। उन्होंने कहा है—'देवकी का पुत्र तेरे पति का [illegible] करेगा।' यह सुनकर मेरी चिन्ता का पार नहीं है।

[illegible] का कथन सुनकर कंस ने अट्टहास किया, मानो होनहार [illegible] अपने अट्टहास्य से उड़ा देना चाहता हो। उसने जीवयशा से कहा—'बस, इसी बात से इतनी चिन्ता हो गई।

[illegible] [illegible] [illegible] [

गो [illegible] । [illegible] [illegible] [illegible]

सहायदाताओं की नामावली

५१) श्रीमान् शोभागमलजी सा० लोढा, बगड़ी-सज्जनपुर की ओर से, उनकी स्व० पत्नी केशर बाई की पुण्य स्मृति में।

५१) श्रीमान् धीरजमलजी रेखचन्दजी सा० राका की ओर से, उनके स्व० पिता श्री जगनमलजी सा० की पुण्य स्मृति में।

५१) श्रीमान् सुखराजजी पारसमलजी सा० दूगड़ की ओर से, श्री सुखराजजी की मातेश्वरी श्री चान्दा बाई की पुण्य स्मृति में।

५१) श्रीमान् कुन्दनमलजी सा० बोरीदासजी मिश्रीलालजी सा० कालेला की ओर से, श्रीकुन्दनमलजी सा० की धर्मपत्नी की पुण्य स्मृति में।

५१) श्रीमान् केशरीमलजी सा० मरलेचा की ओर से, उनके स्व० पिता श्री हंसराजजी सा० की पुण्य स्मृति में।

मिलने का पता:—

हैडमास्टर महावीर जैन मिडिल स्कूल

बगड़ी सज्जनपुर (मारवाड़)

नीति मे यही अन्तर है। धर्म कहता है—'लीजिए', —'लाये जाओ।' नीति स्वार्थ पर नजर रखती र्थ की ओर सकेत करता है। जिस प्रकार माता को चूमना, पुचकारना ही नही है, किन्तु बालक ण करना है, इसी प्रकार आगे बढते जाइये और धर्म को हृदय मे स्थान देते चले जाइए।

ने हिरण्यक से कहा—मै पहले अपने बन्धन न ने साथियो के बधन कटवाने का आग्रह क्यो करता ारण यह है—

त्यगुणानाञ्च, साम्यमेषा मया सह ।
फल ब्रूहि, कदा किं तद् भविष्यति ॥

जाति से मै भी कबूतर हू और यह सब भी कबू- से मेरे दो पख है और इन सब के भी दो-दो पख लिहाज से भी हम सब बराबर है। इतनी सब समा- भी यह मुझे राजा मानते है। अब आप ही बताइये भ इन्हे कब मिलेगा ?

बल के दो भाग बताये जाते है। क्या राजा भी दो ा है ? ऐसा कहने वाला वास्तव मे बलवान् नही लवान् वह है जो अपने सर्वस्व का समर्पण करके जनो की रक्षा करता है।

ने कहा—मित्र ! जब मै राजा हू तो राजा की

पापकी आज्ञा का पालन भारत्य करेंगे और आप जो आज्ञा देंगे वही करेंगे।'

सकट एक शिक्षाप्रद बोध-पाठ है। राजा ने कहा—'यदि सब एक मत हो जाओ तो हम सकट से मुक्त हो सकते है। एक भी कबूतर अगर अलग रहा तो सकट से मुक्त नहीं हो सकेंगे। अतएव सब हिलामिल कर एक साथ उठो और इस जाल को साथ ही-साथ उठा लो, तो जाल से मुक्ति पाई जा सकेगी।'

आज भारत मे फूट है और इसी फूट के कारण पारधियो की बन पडी है। फूट न होती तो भारत किसी के जाल मे न फँसता।

सब कबूतर मिलकर एक साथ जाल को लेकर आकाश में उड चले। कबूतरो को उडते देख पारधी उनके पीछे-पीछे दौडा और सोचने लगा—मै इन कबूतरो को अपने जाल में फँसाना चाहता था पर यह तो मेरे जाल को लेकर चलते बने। इस समय यह सब एकमत हो रहे है अतएव गिरते नही है, पर जब इनमे फूट पडेगी तब सारे नीचे आ गिरेंगे। यह सोचकर पारधी कबूतरो के पीछे-पीछे भागने लगा। पारधी को पीछा करते देख राजा ने कहा—देखो, पीछे अपना शत्रु आ रहा है। अतएव आपस मे झगडना नही और यह न सोचना कि उडने मे सब अपने बल का उपयोग कर रहे है तो मै अपने बल का उपयोग क्यो करूँ? यदि आपस में लडोगे-झगडोगे या एक-दूसरे को सहकार न दोगे, तो हम सभी नीचे गिर पडेंगे और काल का ग्रास बन जाएँगे। राजा की यह चेतावनी सुनकर सब कबूतर मिल कर उडने लगे। पारधी थोडी दूर तो पीछे-पीछे दौडा, पर अन्त में वह थक गया और

परमात्मा की पार्थना के संबंध में यह बात हुई। हमें यह विचार करना चाहिए कि परमात्मा की पार्थना किस प्रकार करनी चाहिए।

[illegible] और [illegible] भिन्न-भिन्न होने के कारण परमात्मा की [illegible] भी भिन्न भिन्न हो सकती हैं और [illegible] इस विभिन्नता में भी एकता का [illegible] करते हैं। भिन्न-[illegible] में किस प्रकार [illegible] रहते हैं इस बात का विवेचन ज्ञानी जन [illegible] कर सकते हैं, फिर भी अपनी शक्ति के अनुसार मैं [illegible] इस पर प्रकाश डालने का प्रयत्न करता हूँ।

[illegible] में जो कुछ कहा गया है उससे यह [illegible] है कि कोई सिद्ध है कोई साधक है। साधक सिद्ध बनने के लिए साधन का उपयोग करता है क्योंकि साधन द्वारा ही सिद्ध बना जा सकता है। सिद्धों को साधन देखकर यह समझा जा सकता है कि यदि [illegible] अच्छे साधन हमें मिल सकें तो हम भी सिद्ध हो सकते हैं। जिन्होंने सिद्ध पद पा लिया है वे हमारे लिए साधन का जो आदर्श छोड़ गये हैं अगर उसी आदर्श-मार्ग का अनुसरण किया जाय और उल्टे मार्ग का अवलम्बन न लिया जाय तो हम भी निस्सन्देह सिद्धि लाभ कर सकते हैं।

सिद्धों ने हमारे लिए कौन-सा आदर्श-मार्ग बताया है? इस प्रश्न के उत्तर में मैं कहता हूँ—वह मार्ग परमात्मा की पार्थना करने का मार्ग है।

[illegible] [illegible] [illegible] [

साथ प्रीति-सम्बन्ध स्थापित करो ऐसा सम्बन्ध—जो रग-रग में रम जाय, नस-नस में व्याप्त जाय। ऐसा न हो कि जब तक यहाँ बैठे हो तब तक तो परमात्मा को याद करो और यहाँ से बाहर पैर धरते ही उसे भूल जाओ। अगर कोई बालक, पाठशाला में 'पोच और पान—दस' गिनना सीखा हो, पर पाठशाला से छुट्टी होते ही 'बारह' गिनने लगे तो उसकी सच्ची शिक्षा नहीं कहलाती। इसी प्रकार यहाँ से जाते ही अगर मस्तक में से परमात्मा के नाम को भी विदा करदो तो तुम्हारा उपदेश-श्रवण भी—वास्तविक—सफल नहीं कहला सकता। अतएव जब यहाँ से बाहर चले जाओ तब भी परमात्मा को भूलो नहीं। वरन् परमात्मा की प्रार्थना द्वारा, संसार में अवश्यभावी जन्म-जरा-मरण आदि भयों से मुक्त होकर अमर बनने का प्रयत्न करो। जीवन के इस प्रधान लक्ष्य को भूल न जाना।

कुछ लोगों को यह भ्रम है कि गृहस्थ-अवस्था में रहते हुए भावना अनुतमय नहीं बन सकती। अतएव वे कहते हैं—हम क्या करें—भावना को अनुतमय बनायें या संसार-व्यवहार का निर्वाह करें? वास्तव में, गृहस्थावस्था साधक दशा में बाधक है किन्तु जो गृहस्थ अनुत-भावना का अभ्यासी बन जाता है, उसके लिए गृहस्थ-अवस्था सर्वथा बाधक नहीं है। अतएव मैं सिर्फ यही कहता हूँ कि परमात्मा की प्रार्थना द्वारा भावना को अनुतमय बनाने का प्रयास करो। प्रार्थना के विषय में तुम बहुत दिनों से सुन रहे हो। उसका कुछ असर तुम्हारे हृदय पर पड़ा है या नहीं? जब द्रव्य वस्तु—स्थूल—का प्रभाव भी अवश्य पड़ता है तो भाव का प्रभाव पड़े बिना क्या रह सकता है? अगर तुम उपदेश को अपने

नका मुख कितना प्रफुल्लित है ! कितना आह्लादमय है ! कैसी अनुपम शांति उनके मुख पर किलोलें कर रही है ! उनके नेत्र [illegible] तो मालूम होगा, उनमें से कैसी अद्भुत जोति जग रही है ! कैसा उल्लास उनमें से फूटा पड़ता है ! उनकी किसी भी चेष्टा का अवलोकन करो, विदित होगा कि उसमें जैसे अलौकिक [illegible], अगाध गंभीरता और निस्पृहता भरी हुई है !

दुनिया के लोग जिसे पर्वत के समान दुःख अनुभव करते हैं, उस भयंकर दुःख के माथे पर आ पड़ने पर भी, जिस दिव्य भावना का पवित्र त्राण पाकर ज्ञानी जन प्रसन्न एवं प्रमोदमय बने रहते हैं, मानो चिउंटी भी शरीर पर नहीं रेंग रही है, उस भव्य भावना को खोजो। उसमें एक अद्भुत सामर्थ्य है। वह भावना एक ऐसा अनोखा यंत्र है, जिसमें घोर से घोर दुःख भी सुख का रूप धारण कर लेता है। वह वेदना की विकृति को निकाल फैंकती है। इस भावना से भूषित भव्य पुरुष कैसा होता है ? यह स्पष्ट करने के लिए एक प्राचीन ग्रंथ में आई हुई कथा उपयोगी होगी। यह कथा सुन कर तुम समझ सकोगे कि अमृतमयी भावना वाला पुरुष किस प्रकार स्व-पर का भेद भूल जाता है और विपदा की वेला कितना अधिक निश्चल और प्रसन्न रह सकता है।

मघा का वृत्तान्त *

मगध देश के एक गांव में एक किसान के घर पुत्र का जन्म हुआ। पुत्र का जन्म मघा नक्षत्र में हुआ था, अतएव उसका

* बौद्ध जातक कथा।